IV. मुद्रा, ऋण और मूल्य

मुद्रा और ऋण

108. मांग को उपलब्ध साधनों के अनुसार समायोजित करने की प्रक्रिया के कारण, जिसकी चर्चा इससे पहले के अध्याय में की गयी है, मुद्राबाहुल्यकारी दबाव पैदा हो गये। राजस्व सम्बन्धी उपायों से समर्थित, मुद्रा और मूल्यों सम्बन्धी नीतियों का उद्देश्य यह था कि मांग और पूर्ति में इस प्रकार मेल बिठाया जाय कि जहां तक हो सके, समाज के कमजोर वर्गों के हितों की रक्षा हो और प्राथमिकताप्राप्त क्षेत्रों का विकास जारी रहे। आगामी महीनों के उत्पादन की संभावनाओं को देखते हुए, कुल मिला कर, नियंत्रण की नीति अवश्य जारी रखी जानी चाहिए।

109. जनता के पास मुद्रा की उपलब्धि (अर्थात् जनता के पास की मुद्रा और बैंकों की मांग-जमा के जोड़) में काफी तेजी से वृद्धि होती रही हालांकि पिछले दो वर्षों की तुलना में इसका अनुपात कम था। मुद्रा-उपलब्धि में होने वाली वृद्धि की दर जो 1964–65 में 8.8 प्रतिशत और 1965–66 में 11.1 प्रतिशत थी, 1966–67 में घट कर 7.1 प्रतिशत रह गयी। चालू प्रथा के अनुसार मीयादी जमा की रकमों को मुद्रा-उपलब्धि में शामिल नहीं किया जाता; लेकिन यदि उन्हें शामिल कर भी लिया जाय तो भी कुल मुद्रा-प्रसार 1964–65 में 9.4 प्रतिशत, 1965–66 में 12.0 प्रतिशत और 1966–67 में 9.3 प्रतिशत बैठेगा।

110. चूंकि वास्तविक उत्पादन, जो स्थिर मूल्यों के आधार पर राष्ट्रीय आय से आंका जाता है, सम्भवतः 1966–67 में 1964–65 की अपेक्षा अभी भी कम था, इसलिए दो वर्षों में मुद्रा उपलब्धि में लगभग 20 प्रतिशत की जो वृद्धि हुई वह बहुत अधिक थी और

मुद्रा सम्बन्धी निर्देशक

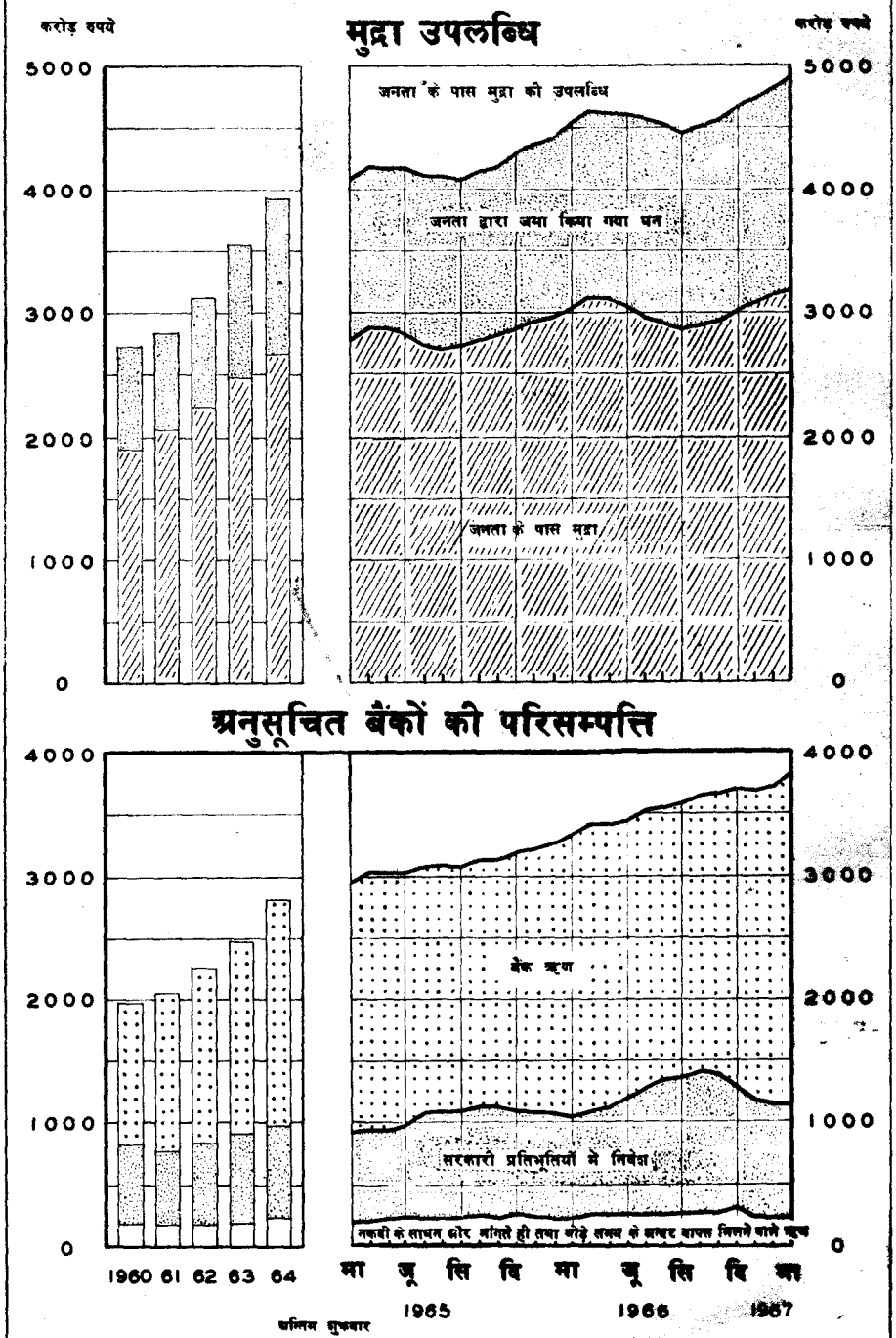

अन्तिम सुधवार

वित्त मंत्रालय, अर्थ प्रभाग

अतिरिक्त मांग के दबाव की द्योतक है । 1966–67 में वृद्धि की दर में जो कमी हुई, वह संभवतः अर्थ-व्यवस्था में मांग की वृद्धि की गति धीमी हो जाने के कारण हुई थी ।

111. यह नहीं हो सकता कि किसी अवधि में मुद्रा उपलब्धि में होने वाली वृद्धि के, उत्पादन में होने वाली वृद्धि से अधिक हो जाने पर, मुद्रा बाहुल्यकारी दबाव पैदा न हो । लेकिन मुद्रा-उपलब्धि में उत्पादन-वृद्धि की अपेक्षा जितनी अधिक वृद्धि हुई हो, उसके आधार पर अतिरिक्त मांग की मात्रा का अनुमान लगाना थोड़ी अवधि की दृष्टि से सही नहीं होगा । इसका कारण यह है कि यह आशा करना उचित नहीं होगा कि थोड़ी अवधि में मुद्रा के स्टाक और आमदनियों की प्राप्ति (फ्लो आफ इनकम) का अनुपात एक-सा रहेगा । हो सकता है कि अर्थ-व्यवस्था में अधिक मुद्रा की जो मांग है उसका कारण जिन्स बाजार (कमोडिटी मार्केट) में असन्तुलन होने के परिणामस्वरूप मूल्यों में होने वाली वृद्धि हो । इसके अलावा जब पिछले कई वर्षों से मुद्रा उपलब्धि में, स्थिर मूल्यों पर राष्ट्रीय आय में होने वाली वृद्धि की दर से काफी ऊंची दर पर वृद्धि हो रही है तब इसे एक वर्ष की छोटी-सी अवधि में उत्पादन में होने वाली वृद्धि की दर के स्तर पर नहीं लाया जा सकता । इन सब बातों को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि मुद्रा-उपलब्धि में पहले के वर्षों में हुई वृद्धि की ऊंची दरों की तुलना में 1966–67 में 7.1 प्रतिशत की जो वृद्धि हुई वह स्थिति में कुछ सुधार होने की ही द्योतक है ।

112. सामान्यतः अर्थ-व्यवस्था में होने वाली उत्पादन और लेन-देनों की वृद्धि के लिए अधिक मात्रा में मुद्रा-उपलब्धि की आवश्यकता होती है और आम तौर पर इसकी व्यवस्था बैंकों द्वारा सरकार को या गैर-सरकारी क्षेत्र को ऋण देकर की जाती है । पहले के वर्षों की तरह 1966–67 में मुद्रा-उपलब्धि में अधिकतर वृद्धि सरकार द्वारा रिजर्व बैंक और वाणिज्यिक बैंकों से लिये गये ऋणों के परिणामस्वरूप हुई । बैंकों द्वारा गैर-सरकारी क्षेत्र को भी पिछले वर्ष की अपेक्षा काफी अधिक ऋण दिया गया । सारणी 7 में यह बताया गया है कि मुद्रा -उपलब्धि में कितने प्रतिशत वृद्धि हुई और वह किस प्रकार हुई ।

सारणी 7

पूर्ववर्ती वर्ष की समाप्ति के समय की मुद्रा-उपलब्धि में हुई वृद्धि का प्रतिशत

	1964–65	1965–66	1966–67
सरकार को ऋण . . .	+6.0	+12.0	+6.1
गैर-सरकारी क्षेत्र को ऋण . . .	+2.5	+2.0	+3.6
विदेशी परिसम्पत्ति	−0.9	−0.4	−0.5
अन्य	+1.2	−2.5	−2.1
मुद्रा उपलब्धि	+8.8	+11.1	+7.1

113. नीचे की सारणी में विस्तार से यह बताया गया है कि 1966–67 में मुद्रा उपलब्धि में 327 करोड़ रुपये की जो वृद्धि हुई वह वस्तुतः किस प्रकार हुई । इसमें ध्यान देने की एक विशेष बात यह है कि 1966–67 में केन्द्रीय सरकार ने रिजर्व बैंक से 333 करोड़ रुपये के ऋण लिये; इसमें से कुछ का कारण यह था कि केन्द्रीय सरकार को राज्यों को वित्तीय सहायता प्रदान करनी पड़ी ताकि उन्होंने रिजर्व बैंक से अपनी जमा रकमों से जो अधिक रकमें निकाल ली थीं, उन्हें वे वापस कर सकें ।

इस प्रकार की सहायता की रकम 108 करोड़ रुपया थी। 1966–67 मे केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकारों पर रिजर्व बैंक के ऋण में 195 करोड़ रुपये की वृद्धि हुई जब कि पिछले वर्ष 464 करोड़ रुपये की वृद्धि हुई थी, जो इस प्रकार है :

सारणी 8

मुद्रा-उपलब्धि में घट-बढ़

(करोड़ रुपयों मे)

	1965–66	1966–67
1. **सरकार को दिये गये बैंक ऋण**	+497	+278@
	(+518)*†	
(क) सरकार को रिजर्व बैंक द्वारा दिया गया ऋण :	+404*	+195@
क. केन्द्रीय सरकार को (i+ii+iii—iv)	+291*	+333@
(i) रुपया प्रतिभूतियां	+361	+217@
(ii) रिजर्व बैंक द्वारा बेची और भुनाई गयी हुंडियां	—3	+112
(iii) रुपये के सिक्के	—5	—15
(iv) केन्द्रीय सरकार की जमा रकमें	+61*	—19
ख. राज्य सरकारों को (i—ii)		
(i) राज्य सरकारों को दिये गये ऋण और अग्रिम	+112	—138
(ii) राज्य सरकारों की जमा रकमें	..	+12
(ख) बैंकों के पास सरकारी प्रतिभूतियां	93	+83
	(+114)†	
2. **गैर-सरकारी क्षेत्र को बैंकों द्वारा दिया गया वास्तविक ऋण** (2क—2ख)	+81 (+60)†	
क. बैंकों द्वारा दिये गये अग्रिम और उनके पास गैर-सरकारी प्रतिभूतियां (बैंकों द्वारा दिया गया कुल ऋण)	+290	+427
ख. मीयादी जमा	+209	
	(+230)†	
3. **रिजर्व बैंक की वास्तविक विदेशी मुद्रा परिसम्पत्ति**	—16*	—23@
4. **जनता के पास मुद्रा उपलब्धि**		
क. जनता के पास मुद्रा	+458	+327
ख. जनता के पास जमा रकम (डिपाजिट मनी)	+181	+185

*इसमें सरकार द्वारा रिजर्व बैंक से सोना खरीदने के लिए खर्च की गयी रकम शामिल नहीं है ।

@रुपये के सम-मूल्य में हुए परिवर्तन के बाद रिजर्व बैंक की परिसम्पत्ति के किये गये पुनर्मूल्यांकन को हिसाब में नहीं लिया गया है ।

†संयुक्त राज्य अमेरिका की रुपया निधियों के राज्य बैंक से रिजर्व बैंक में अन्तरण के लिए आंकड़े समायोजित कर लिये जाते हैं ।

टिप्पणी—रिजर्व बैंक द्वारा सरकार को दिये गये ऋण के जो आंकड़े उपर्युक्त सारणी में दिये गये हैं, वे 31 मार्च 1966 से 31 मार्च 1967 तक रिजर्व बैंक के प्रति सरकार की ऋणग्रस्तता में हुए परिवर्तन के द्योतक हैं। लेकिन राजस्व वर्ष के आंकड़े, उस वर्ष के समाप्त होने के कुछ दिन बाद ही पूरी तरह से समायोजित कर लिये जाते हैं। इसके अलावा ऊपर दिये गये आंकड़ों में, इस प्रकार की मदें भी शामिल हैं, जैसे रिजर्व बैंक के पास जमा रुपये के सिक्कों में हुए परिवर्तन, रिजर्व बैंक द्वारा जनता से खरीदी और भुनाई गई हुंडियां और रिजर्व बैंक के पास की दीर्घ-कालीन रुपया प्रतिभूतियों में परिवर्तन। इन बातों के कारण, रिजर्व बैंक द्वारा सरकार को दिये गये ऋण के जो आंकड़े यहां दिये गये हैं, वे बजट पत्रों में दिखाये गये बजट सम्बन्धी घाटे के आंकड़ों से भिन्न होते हैं।

114. रुपये की सट्टेबाजी के प्रयोजनों अथवा उन प्रयोजनों के लिए, जिनका सम्बन्ध उत्पादन की वृद्धि से नहीं है, इस्तेमाल किये जाने से रोकने की सरकार की इच्छा के अनुसार, ऋण-नीति का कुल मिला कर यह उद्देश्य रहा कि बैंकों द्वारा दिये जाने वाले ऋणों पर नियंत्रण कायम रखा जाय। 1966 के कम कामकाज के मौसम में, अर्थात् मई से अक्टूबर तक की अवधि में, रिजर्व बैंक ने अनुसूचित बैंकों को सलाह दी कि वे ऋण में पर्याप्त कमी करें और जमा रकमों में होने वाली वृद्धि से और रकमों को मौसमी वापसी से उन्हें जो साधन प्राप्त हों उन्हें रखे रहें ताकि बाद के अधिक कामकाज के मौसम में ऋण की मांग को पूरा करने में वे पहले से अच्छी हालत में रहें। रिजर्व बैंक ने खास तौर से यह सलाह दी कि वे अतिरिक्त जमा रकमों का उपयोग अपने अग्रिमों में वृद्धि करने की बजाय, तरल (लिक्विड) सरकारी प्रतिभूतियों में निवेश के लिए करें जिन्हें अधिक कामकाज के मौसम में भुनाया जा सकता है। बैंकों ने कुल मिलाकर इस सलाह पर अमल किया; कम कामकाज के मौसम में उनकी जमा रकमों में 265 करोड़ रुपये की और सरकारी प्रतिभूतियों में उनके निवेश में 298 करोड़ रुपये की वृद्धि हुई।

115. 1966 के कम कामकाज के मौसम में बैंक-ऋण में जो मौसमी कमी हुई वह वास्तविक रकम के रूप में लगभग उतनी ही थी जितनी 1965 के कम कामकाज के मौसम में हुई थी, लेकिन अधिक कामकाज के पिछले मौसम में बैंक-ऋण में हुई वृद्धि के अनुपात के रूप में वह अधिक अर्थात् 28 प्रतिशत थी, जब कि 1965 में इस प्रकार की कमी 23 प्रतिशत हुई थी।

116. 1966 के कम कामकाज के मौसम में उससे पहले के वर्ष के कम कामकाज के मौसम की अपेक्षा बैंकों की जमा रकमों विशेषत: मीयादी जमा की रकमों में अधिक वृद्धि हुई (मौसमी आंकड़े परिशिष्ट की सारणी 4.3 में दिये गये हैं)। 1966 के कम कामकाज के मौसम के शुरू में जो रकमें जमा थीं उनमें 14.8 प्रतिशत की वृद्धि हुई, जबकि 1965 में 13.5 प्रतिशत की वृद्धि हुई थी। जान पड़ता है इसका एक कारण यह था कि रिजर्व बैंक ने गैर-बैंकिंग कम्पनियों द्वारा जनता से थोड़ी अवधि के लिए जमा करने के लिये रकमें लिये जाने पर प्रतिबन्ध लगा दिया था। ऐसा लगता है कि पहले के वर्ष में निजी बचतों का काफी बड़ा हिस्सा बैंकों में मीयादी जमा के रूप में रखे जाने की बजाय इस प्रकार की थोड़ी अवधि की जमा के रूप में रखा गया था, जिसका परिणाम यह हुआ कि 1965 के कम कामकाज के मौसम में, जमा की रकमों में जो वृद्धि हुई वह सामान्य वृद्धि से कुछ कम थी। रिजर्व बैंक द्वारा जनवरी 1966 में जारी किये गये निदेश के अन्तर्गत गैर-बैंकिंग कम्पनियों को मांगने पर या नोटिस दिये जाने पर वापस दी जाने वाली जमा की रकमें लेने से रोक दिया गया और गैर-वित्तीय कम्पनियों को बारह

महीने से कम समय में वापस की जाने वाली तथा किराया-खरीद कम्पनियों को छः महीने से कम समय में वापस की जाने वाली जमा की रकमें लेने से रोक दिया गया। अक्टूबर 1966 में इन पाबन्दियों को और कड़ा कर दिया गया और अब इनके अन्तर्गत, अधिकतर गैर-बैंकिंग कम्पनियों को अपनी चुकता पूंजी और मुक्त प्रारक्षित निधि के 25 प्रतिशत से अधिक रकम जमा करने से रोक दिया गया है; यह अनुपात, स्वाभाविक रूप से बारह महीने और उससे बड़ी अवधि के लिए जमा की जाने वाली रकमों पर लागू होगा क्योंकि इससे कम अवधि की जमा की रकमें स्वीकार करने पर रोक लगा दी गयी है।

117. अधिक कामकाज के मौसम के शुरू में---अर्थात् अक्टूबर 1966 के अन्त में---जहां तक बैंकों के नकदी या नकदी जैसी परिसम्पत्ति रूपी साधनों का सम्बन्ध है, बैंकों की स्थिति उनकी तत्कालीन देनदारियों को देखते हुए अच्छी थी। इस वर्ष अधिक कामकाज के मौसम के शुरू में, अनुसूचित बैंकों की नकद और निविष्ट रकमें उनके पास जमा रकमों का 40.3 प्रतिशत भाग थीं, जबकि उससे पहले के अधिक कामकाज के मौसम के शुरू में यह प्रतिशत 37.0 था; ऋण और जमा का अनुपात कम अर्थात् पहले के वर्ष के 71.7 प्रतिशत के मुकाबले 68.1 प्रतिशत था।

118. अधिक कामकाज के मौसम के लिये ऋण-नीति का उद्देश्य यह था कि बैंक धन सम्बन्धी मौसमी आवश्यकताओं को पूरा कर सकें, जिनके पहले घोषित की गयी उदार आयात-नीति को देखते हुए काफी अधिक होने का अनुमान था। उद्देश्य यह था कि इस बात की व्यवस्था की जाय कि औद्योगिक प्रयोजनों के लिये ऋण की मांग पूरी की जाय और रकमों को व्यापार और अन्य गैर-औद्योगिक प्रयोजनों के लिए इस्तेमाल होने से रोका जाय। इन उद्देश्यों को ध्यान में रखकर रिजर्व बैंक ने अधिक कामकाज के पिछले मौसम की अपनी ऋण नीति में कुछ परिवर्तन किये। जब तक बैंक अपनी नकदी या नकदी जैसी अन्य परिसम्पत्ति का अनुपात 30 प्रतिशत बनाये रखते थे तब तक वे रिजर्व बैंक से पहले की तरह बैंक दर पर ऋण ले सकते थे। इसके अलावा, काम कामकाज के मौसम के अन्त में, ऋण लेनेवाले बैंकों की नकदी और नकदी जैसी परिसम्पत्ति का जो वास्तविक अनुपात हो उस के 10 प्रतिशत के बराबर का और ऋण वे बैंक दर पर ले सकते थे। अपेक्षाकृत बड़े बैंकों के लिए यह आवश्यक कर दिया गया कि वे इस बात की सुनिश्चित व्यवस्था करें कि अक्टूबर 1966 के अन्त और अप्रैल 1967 के अन्त के बीच की अवधि में बैंकों द्वारा दिये गये ऋणों में जो वृद्धि हो, उसका कम से कम 80 प्रतिशत भाग औद्योगिक प्रयोजन के लिये ऋण लेनेवालों को और/या आयात तथा निर्यात बिलों के आधार पर दिया जाय। अन्य बैंकों को भी इस पद्धति का अनुसरण करने की सलाह दी गयी। कुल मिला कर, ऋण नीति का उद्देश्य यह था कि उचित प्रयोजनों के लिये धन दिया जाय, लेकिन रिजर्व बैंक से सीमा से अधिक ऋण लेने के लिए बैंकों को दण्डित किया गया; न्यूनतम दण्डात्मक दर 10 प्रतिशत थी।

119. 31 मार्च, 1967 तक, अनुसूचित बैंकों द्वारा दिये गये ऋणों में 433 करोड़ रुपये की वृद्धि हुई जबकि पिछले वर्ष 315 करोड़ रुपये की वृद्धि हुई थी। इसके बाद इसमें थोड़ी सी कमी हुई और अधिक कामकाज के सारे मौसम में अर्थात् अक्टूबर 1966 के अन्त से अप्रैल 1967 के अन्त तक की अवधि में ऋण में 427 करोड़ रुपये की वृद्धि हुई (देखिए परिशिष्ट की सारणी 4.3)। जमा रकमों के रूप में साधनों की प्राप्ति अपेक्षाकृत कम दर पर हुई। अनुसूचित बैंकों को अपनी निविष्ट रकमें निकाल लेने के बाद भी रिजर्व बैंक से 138 करोड़ रुपया ऋण लेना पड़ा जबकि अधिक कामकाज के पिछले मौसम में ताजे ऋणों की अधिकतम रकम 103 करोड़ रुपया थी। यद्यपि, अधिक कामकाज के मौसम में कुल ऋण-विस्तार, अनुमान से कम रहा लेकिन उत्पादन में हुए वास्तविक परिवर्तनों के अनुसार जितना विस्तार होना चाहिए था वह उससे अधिक था; इसके अलावा ऋण में होने वाली वृद्धि का विभाजन उद्योग और अन्य प्रयोजनों के बीच 80:20 के अनुपात से करने का जो निदेश रिजर्व बैंक द्वारा दिया गया था,

इसका भी कड़ाई से पालन नहीं किया जा रहा था। इसलिए बैंकों को यह सलाह देना जरूरी हो गया कि उन्होंने अपने ग्राहकों के लिए जो ऋण-सीमा निर्धारित की है उनमें वे कमी करें और उपर्युक्त अनुपात बनाये रखने के उद्देश्य से, दिये गये अग्रिमों की जितनी रकम वापस लेनी जरूरी हो उतनी रकम वापस भी ले लें।

120. अधिक काम काज के मौसम में मुद्रा बाजार में, कुल मिला कर, काफी तंगी रही और बम्बई के बाजार में मार्च के दौरान मांगते ही चुकाये जाने वाले ऋण के ब्याज की दर (काल मनी रेट) बढ़ कर 12 प्रतिशत हो गयी। इसके बाद यह दर कम हो गयी है।

121. सामान्य ऋण-नीति को समर्थन देने के लिये खास-खास वस्तुओं के सम्बन्ध में ऋणों पर नियन्त्रण भी लागू किये गये हैं। अप्रैल, में रिजर्व बैंक ने, कुछ मिलों और व्यापारियों द्वारा रूई और कपास की बहुत अधिक खरीद किये जाने और इन चीजों का स्टॉक किये जाने के समाचारों को देखते हुए, अनुसूचित बैंकों को यह सलाह दी कि वे रूई और कपास के एवज में दिये जाने वाले अपने ऋणों को सीमित रखें। इस उद्देश्य से कि आयातित रूई के आने में रुकावट न पड़े, इस प्रकार की रूई को इस नियन्त्रण के दायरे से बाहर रखा गया। रूई के निर्यात के लिए जहाज पर लदान होने से पहले के ऋण (प्री-शिपमेंट क्रेडिट) पर यह नियन्त्रण लागू नहीं किया गया। राज्य सरकार, खाद्य निगम और उनके अभिकर्त्ताओं (एजेंट) से भिन्न पार्टियों को धान और चावल के एवज में दिये जाने वाले अग्रिमों के सम्बन्ध में भी उच्चतम सीमा कम कर दी गयी।

122. हो सकता है कि इस बात की सुनिश्चित व्यवस्था करने के साथ-साथ कि औद्योगिक विस्तार के प्रयोजनों के लिए पर्याप्त मात्रा में ऋण प्राप्त होता रहे, ऋण पर नियंत्रण कायम रखने की नीति से ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गयी हो जिसमें बैंकों से सबको आवश्यक मात्रा में धन प्राप्त न हुआ हो। बढ़ती हुई कीमतों की स्थिति में, ऋण-नीति को बहुत से कठिन विकल्पों का सामना करना पड़ता है। ऋण-विस्तार की सम्पूर्ण गति पर और विशेषतः सट्टेबाजी और कम जरूरी प्रयोजनों के लिए दिए जाने वाले ऋण पर नियंत्रण कायम रखना जरूरी है। इसके साथ-साथ, इस बात को मानना जरूरी है कि बढ़ती हुई कीमतों के ही कारण, उत्पादनकारी प्रयोजनों के लिए ऋण की वास्तविक आवश्यकताएं बढ़ जाती हैं। आंशिक रूप से, इस बात को महसूस करते हुए सरकार अर्थ-व्यवस्था में ऋण विस्तार की अनुमतिप्राप्त सीमा के एक अपेक्षाकृत छोटे भाग को अपने प्रयोजनों के लिए रखने का प्रयत्न कर रही है। लेकिन यह स्पष्ट है कि आने वाले काफी समय के लिए, ब्याज की यथोचित ऊंची दरों को बनाये रखने तथा रकमों को सट्टेबाजी और इसी प्रकार के अन्य प्रयोजनों के लिए इस्तेमाल होने से रोकने की नीति को जारी रखना पड़ेगा। ऐसी अवधि में, जब मूल्यों में वृद्धि हो गयी हो और मूल्यों के लगातार बढ़ते रहने की सम्भावना पैदा हो गयी हो, उत्पादन में वृद्धि करने के साथ-साथ मूल्यों में यथोचित स्थिरता लाने की नीति को सफल बनाने के लिए यह जरूरी होगा कि सरकार और गैर-सरकारी क्षेत्र द्वारा बैंकों को मांगे किये जाने वाले ऋण-विस्तार पर लगातार नजर रखी जाय।

मूल्य

123. पहले बताया जा चुका है कि लगातार दो वर्ष तक सूखा पड़ने के कारण आम खपत की अत्यावश्यक वस्तुओं की प्रति व्यक्ति उपलब्धि पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा। दूसरी ओर, वस्तुओं की उपलब्धि में तेजी से कमी होने की स्थिति में, खास तौर पर जब समाज के विभिन्न वर्गों की

स्वाभाविक प्रवृत्ति खपत के अपने-अपने रीति-रिवाजों के स्तरों को बनाये रखने की हो, उपभोक्ता की मांग में तेजी से कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता। यद्यपि वितरण-व्यवस्था में कई प्रकार के फेर-बदल कर के इस प्रवृत्ति को आंशिक रूप से नियंत्रण में रखा गया, लेकिन फिर भी मूल्यों में वृद्धि हुई और खास तौर पर अनाज के मूल्यों में यह वृद्धि काफी तेजी से हुई।

124. 1966–67 में थोक मूल्यों में 16.5 प्रतिशत अर्थात् उतनी ही वृद्धि हुई जितनी पिछले वर्ष हुई थी (देखिए सारणी 9)। पिछले वर्ष अनाज के मूल्यों में सब से अधिक वृद्धि हुई। औद्योगिक कच्चे माल के मूल्यों में निर्मित वस्तुओं के मूल्यों की अपेक्षा अधिक तेजी से वृद्धि हुई। थोक मूल्यों के साथ-साथ वस्तुओं के खुदरा मूल्यों में भी वृद्धि हुई। फरवरी 1967 को समाप्त 12 महीनों में अखिल भारतीय श्रमिक वर्ग उपभोक्ता मूल्य सूचक अंक में 13.8 प्रतिशत की वृद्धि हुई, जबकि गैर-मजदूर शहरी कर्मचारियों के अखिल भारतीय उपभोक्ता मूल्य सूचक अंक में 1966 में 10.4 प्रतिशत की वृद्धि हुई थी।

सारणी 9

थोक मूल्यों के सूचक-अंक

(1952–53–100)

	सूचक अंक			प्रतिशत परिवर्तन		
	26 मार्च, 1966	4 जून, 1966	26 मार्च, 1967	1966-67	1965-66	1964-65
सामान्य सूचक अंक	174.0	184.5	202.7	+16.5	+15.2	+8.7
कृषि सम्बन्धी वस्तुएं	178.0***	186.0**	214.1*	+20.1	+15.2	+11.6
खाद्य वस्तुएं	175.3	190.7	217.6	+24.1	+14.1	+9.0
औद्योगिक कच्चा माल	210.0	223.3	230.1	+12.4	+26.6	+11.8
निर्मित वस्तुएं	157.3	158.4	167.5	+6.5	+11.4	+6.3
मध्यवर्ती वस्तुएं	184.5	192.3	221.7	+20.2	+18.1	+8.8
निर्मित वस्तुएं	152.9	152.8	158.6	+3.7	+10.2	+6.0

*मार्च 1967 के लिये

**मई 1966 के लिये

***मार्च 1966 के लिये

मूल्य सूचक प्रवृत्तियां

श्रमिक वर्ग उपभोक्ता मूल्य

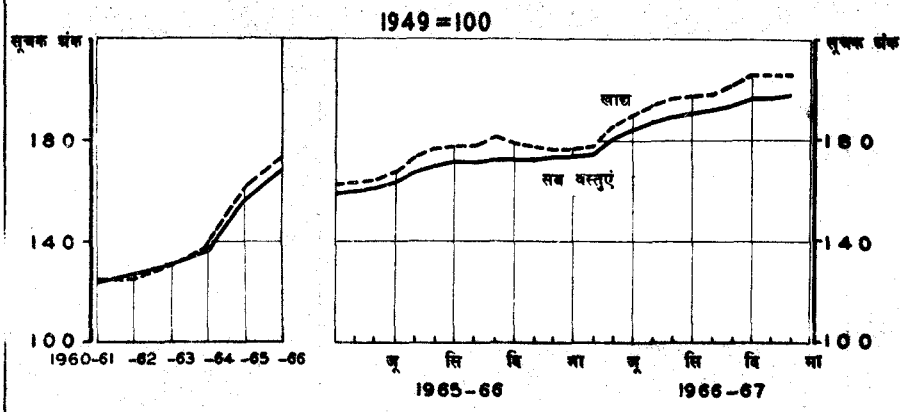

थोक मूल्य

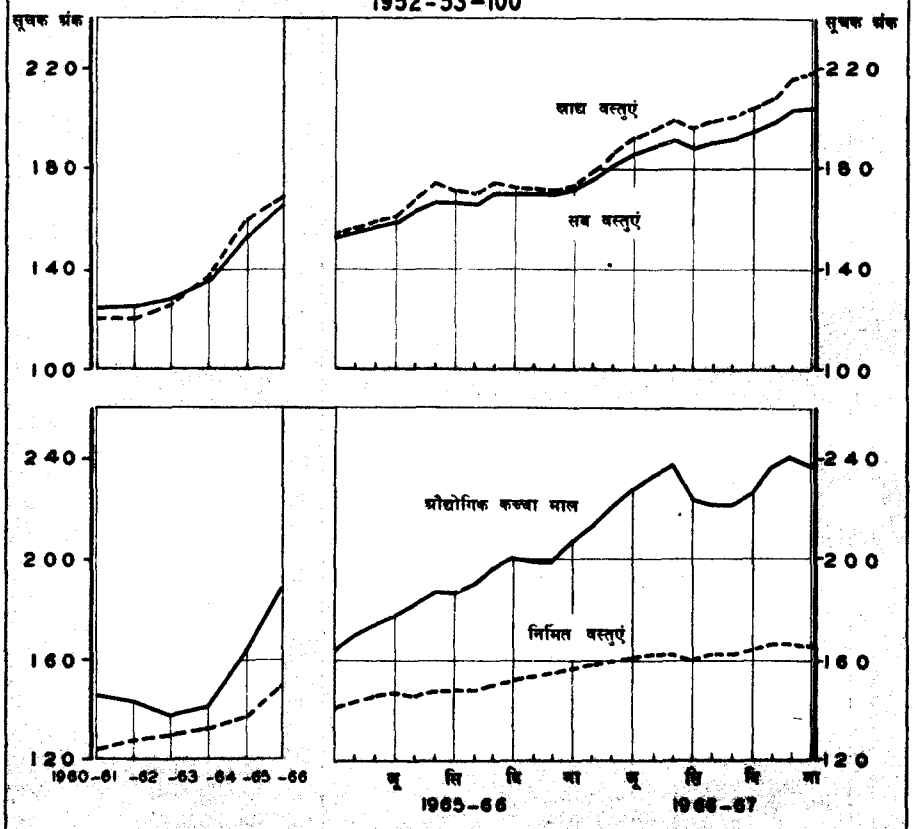

वित्त मंत्रालय, आर्थिक प्रभाग

125. मूल्य सम्बन्धी स्थिति की सब से बड़ी बात 1965–66 के मौसम में कृषि उत्पादन में कमी होना और 1966–67 के मौसम में नाकाफी वृद्धि होना है। स्थिति इस बात से और भी बिगड़ गयी कि पिछले वर्ष के शुरू में स्टाक से कृषि-पदार्थों को निकालने की कुछ सम्भावना थी वह अब नहीं है। इस स्थिति का प्रभाव मुख्य रूप से अन्न और कृषि सम्बन्धी कच्चे माल पर पड़ा। आलोच्य वर्ष में अनाज, कपास और तेलहन के थोक मूल्यों में क्रमशः 23.9 प्रतिशत, 16.5 प्रतिशत और 19.4 प्रतिशत की वृद्धि हुई। इसके अलावा दो और बातें भी थीं जिनके कारण वस्तुओं के मूल्यों में वृद्धि हुई; यद्यपि इन बातों का अन्य वस्तुओं पर कुछ कम प्रभाव पड़ा। पहली बात यह कि जून 1966 में रुपये के अवमूल्यन के बाद विदेशों से आने वाली वस्तुओं के मूल्य बढ़ गये, जिससे बाहर से मंगायी जाने वाली वस्तुओं और उन वस्तुओं के मूल्यों में वृद्धि हो गयी जो बाहर से मंगाये जाने वाले माल की सहायता से बनायी जाती हैं। अवमूल्यन के कारण रासायनिक खाद के मूल्यों में होने वाली वृद्धि सरकार द्वारा राजसहायता देकर पूरी की गयी और अवमूल्यन के कारण पेट्रोलियम से बने पदार्थों के बढ़े हुए मूल्यों के सम्बन्ध में शुल्कों में कमी करके उन्हें बढ़ने से रोका गया। लेकिन अन्य निर्मित वस्तुओं के मूल्य बढ़ गये। इनमें मार्च 1966 के अन्त से 4 जून, 1966 तक अर्थात् अवमूल्यन से ठीक पहले बहुत थोड़ी सी वृद्धि हुई थी। लेकिन, बाद में इन में लगभग 6 प्रतिशत की वृद्धि हो गयी। खास तौर पर धातुओं और धातुओं से बनी वस्तुओं के मूल्यों में पिछले वर्ष की अपेक्षा काफी अधिक वृद्धि हुई है। यही बात चमड़े और नारियल के रेशे के धागे जैसी दूसरी मध्यवर्ती वस्तुओं (इण्टरमीडियेट प्रोडक्ट्स) के सम्बन्ध में भी हुई है। लेकिन यह बात ध्यान देने योग्य है कि अवमूल्यन के बाद की अवधि में निर्मित वस्तुओं के मूल्यों में कुल मिलाकर 6 प्रतिशत की वृद्धि हुई, जबकि 1965-66 की इसी अवधि में 8.2 प्रतिशत की वृद्धि हुई थी।

126. सूखे के कारण बुनियादी वस्तुओं की जो तंगी हुई उसके अलावा मूल्यों में वृद्धि का दूसरा कारण मजदूरी के बढ़े खर्च के कारण अनाज के बढ़ते हुए मूल्यों का अप्रत्यक्ष प्रभाव है। सामान और मजदूरी के खर्च में हुई वृद्धि ने कई अत्यावश्यक वस्तुओं के निर्माताओं को निर्मित वस्तुओं के मूल्यों में वृद्धि करने के लिए सरकार से प्रार्थना करने के लिए प्रोत्साहित किया और कुछ उपयुक्त मामलों में ऐसी वृद्धियों के लिए अनुमति भी दी गयी है। उदाहरण के तौर पर, कपड़े की नियंत्रित किस्मों के मूल्यों में सितम्बर 1966 में 6 प्रतिशत की वृद्धि की गयी (जो उत्पादन-शुल्कों में कमी कर के अंशतः प्रतिसंतुलित कर दी गयी थी) और फिर 14 अप्रैल, 1967 से 4.5 प्रतिशत की फिर वृद्धि की गयी। इस्पात और चीनी के मूल्यों में धीरे-धीरे वृद्धि की गयी। सम्बद्ध सूचक अंकों के अनुसार इस्पात के मूल्यों में 4 प्रतिशत की और चीनी के मूल्यों में 8 प्रतिशत की वृद्धि की गयी।

127. अवमूल्यन के कारण भी बाहर से मंगाये जाने वाले अनाज के मूल्य में वृद्धि हुई। उपभोक्ता को कठिनाइयों से बचाने के लिए सरकार ने बाहर से मंगाये गये अन्न के बढ़े हुए खर्च का भार अपने ऊपर लेने का निश्चय किया और यद्यपि ऐसे अन्न के लिए सरकार द्वारा दिये जाने वाले मूल्य में वृद्धि हुई फिर भी इसके निर्गम मूल्य नहीं बढ़ाये गये। उद्देश्य यह था कि अवमूल्यन के बाद मूल्यों में होने वाली वृद्धि को कम किया जाय और बाहर से मंगाये जाने वाले अन्न के बढ़े हुए खर्च को धीरे-धीरे उसके मूल्य में मिला दिया जाय। अन्न के सम्बन्ध में जो राजसहायता दी जाती थी वह 1966 के अन्त में अंशतः समाप्त कर दी गयी; लेकिन इस पर भी राजसहायता की रकम काफी अधिक अर्थात् 1966-67 में 130 करोड़ रुपया रही। अनुमान है कि चालू वर्ष में राज-सहायता के रूप में 118 करोड़ रुपया खर्च होगा। लगातार दूसरे वर्ष सूखा पड़ने का प्रभाव यह

हुआ है कि खुले बाजार में अनाज के मूल्य और भी बढ़ गये हैं और इन मूल्यों तथा सरकार द्वारा बांटे जाने वाले अनाज के मूल्यों का अन्तर बहुत बढ़ गया है। उदाहरण के तौर पर, खुले बाजार में गेहूं का भाव 100 रुपये से 175 रुपये प्रति क्विंटल है, जबकि उचित मूल्य की दुकानों से लगभग 60 रुपये से 65 रुपये प्रति क्विंटल के हिसाब से गेहूं दिया जाता है। (बुनियादी निर्गम मूल्य तो 55 रुपये ही है; बाकी राज्य सरकारों का उठाने-धरने का और प्रासंगिक खर्च है)। चूंकि खुले बाजार में ज्वार जैसे मोटे अनाज का भाव सरकार द्वारा दिये जाने वाले गेहूं के भाव से अधिक रहा है इसलिए मोटे अनाज की अपेक्षा गेहूं की मांग बढ़ गयी जिसका असर सरकार द्वारा की जाने वाली सप्लाई पर भी पड़ा है। बाहर से मंगाये जाने वाले कोदों (माइलो) के सम्बन्ध में भी राजसहायता दी जाती है इसलिए इसके मूल्य से भी देश में पैदा होने वाले ऐसे ही अन्न के मूल्य से मेल नहीं बैठता।

128. यद्यपि सरकारी वितरण व्यवस्था के अन्तर्गत 23.1 करोड़ व्यक्ति आ जाते हैं, लेकिन सूखे के वर्ष में स्थानीय रूप से अन्न प्राप्त करने की कठिनाइयों और, जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, मूल्यों के ढांचे में बिगाड़ आ जाने के कारण इस व्यवस्था का और अधिक विस्तार किये बिना भी, वर्तमान आधार पर ही आवश्यकताओं को पूरा करने की इसकी क्षमता पर काफी बोझ पड़ा है।

129. इस बात की सुनिश्चित व्यवस्था करने के उद्देश्य से कि अत्यावश्यक वस्तुएं उचित मूल्यों पर मिलती रहें, सरकार ने जो कदम उठाये उनमें से ये उल्लेखनीय हैं: (1) साबुन, दियासलाई, शिशु-खाद्य, साइकिल के टायर और ट्यूबों जैसी वस्तुओं के निर्माताओं के साथ की गयी अनौपचारिक व्यवस्था जिससे लोगों को ये वस्तुएं उचित मूल्यों पर नियमित रूप से मिलती रहें; (2) चीनी के सांविधिक मूल्य और वितरण सम्बन्धी नियंत्रण को जारी रखना; (3) अत्यावश्यक उपभोक्ता वस्तुएं तैयार करने के उद्योगों को उन प्राथमिकता-प्राप्त उद्योगों में शामिल करना जिन्हें माल, फालतू पुर्जों और हिस्सों के आयात के लिए उदारता से लाइसेंस दिये जाते हैं और (4) सोयाबीन के तेल, सूरजमखी फूल के बीजों के तेल, गोले और ताड़ के तेल के आयात के लिए की गयी विशेष व्यवस्था, ताकि बनास्पती और साबुन उद्योगों की आवश्यकता को पूरा किया जा सके।

130. यद्यपि, इस प्रकार समाज के कमजोर वर्गों के हितों की रक्षा करने के उद्देश्य से प्रयत्न किये गये हैं, लेकिन सरकार ने प्रोत्साहन मूल्यों (इंसेंटिव प्राइसेज) की आवश्यकता को भी स्वीकार किया है, ताकि उत्पादन बढ़ाया जा सके। 1966–67 के मौसम के लिए गल्ले के न्यूनतम मूल्य बढ़ा दिये गये और अगले मौसम के लिए भी और भी ऊंचे मूल्यों की घोषणा की गयी है। अन्न की वसूली के भाव, जो पिछले तीन वर्षों में काफी अधिक बढ़ाये गये हैं, इस वर्ष और अधिक बढ़ा दिये गये। मोटे चावल का भाव 69.5 रुपये से 81.0 रुपये प्रति क्विंटल और गेहूं का भाव 70 रुपये से 75 रुपये प्रति क्विंटल के बीच है। (खुले बाजार के भाव अन्न वसूली के भावों से बराबर ऊंचे रहे)। कपास के उच्चतम मूल्यों में भी लगभग 5 प्रतिशत की वृद्धि की गयी।

131. अन्य वस्तुओं के मूल्यों की तुलना में कृषि-पदार्थों के मूल्यों में अधिक तेजी से वृद्धि होने की प्रवृत्ति चालू वर्ष में भी बराबर बनी रही। कुल मिलाकर सभी कृषि-पदार्थों के थोक मूल्यों में पिछले वर्ष की तुलना

में 20 प्रतिशत की वृद्धि हुई, जबकि निर्मित (मेन्युफेक्चर्स) वस्तुओं के मूल्यों में 6.5 प्रतिशत की ही वृद्धि हुई थी। यद्यपि इस से कृषि उत्पादन बढ़ाने में प्रोत्सहान मिलेगा, लेकिन शहरों में मजदूरी और वेतनों के बढ़ने से मूल्यों में बाद में होने वाली वृद्धियों को रोकने लिए भी धारावाहिक नीति की आवश्यकता है।

132. खेती की पैदावार में होने वाली कमियों का वर्तमान मूल्य सम्बन्धी स्थिति पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा है। साथ ही ऐसे भी संकेत मिले हैं जिन से पिछले दो वर्षों में वास्तविक आय में हुई कमी से उपभोक्ताओं की प्रतिरोध भावना का पता चलता है और सम्भव है कि पिछले बारह महीनों में निर्मित वस्तुओं के मूल्यों में जो अपेक्षाकृत कम वृद्धि हुई उसका एक कारण यह भी हो। जब तक खपत की महत्वपूर्ण वस्तुओं, खास तौर पर अन्न की उपलब्धि में बुनियादी कमी बनी रहती है और जब तक वस्तुओं की लागत और उनके मूल्यों में और अच्छी तरह से प्रतियोगितामूलक परिस्थितियों के अनुसार मेल नहीं बैठता, तब तक वस्तुओं की मांग पर बराबर नियंत्रण रखने की आवश्यकता है।